वर्ष-1, अंक-3, अप्रैल - जून 2024 E-ISSN : 2584-2900

प्राचीन भारत में शिक्षा संस्थाएं

(ई. पू. 260 से 700 ई.)

रोहित बिदुआ
सहायक प्राध्यापक
शिक्षा संकाय
श्री कृष्णा विश्वविद्यालय छतरपुर (म.प्र.)

शिक्षा संस्थाएं शहरी सभ्यता की देन थीं, प्राचीन भारत के महानगरों में उच्च शिक्षा-केंद्रों का होना एक विशेषता थी।

तक्षशिला

उस युग में आधुनिक रावलपिंडी नगर से 20 मील उत्तर पश्चिम में अवस्थित तक्षशिला एक विख्यात शिक्षा केंद्र था। जान मार्शन के नेतृत्व में की गई खुदाइयों से पता चलता है कि ईस्वी पूर्व की पांचवीं शताब्दी से लेकर ईस्वी की पांचवीं शताब्दी तक तक्षशिला में निरंतर नागरीय जीवन-शैली विद्यमान थी। ईसा पूर्व की दूसरी शताब्दी के मध्य में तक्षशिला अपने चरमोत्कर्ष पर था। बौद्ध जातक कथाओं से यह स्पष्ट पता चलता है कि उन दिनों भारत के भिन्न-भिन्न भागों से जैसे कि उत्तरापथ में स्थित शिवि और कुरु राज्य, पूर्व में स्थित मिथिला और राजगृह, दक्षिण भारत में स्थित उज्जयिनी से छात्र गांधार राज्य की राजधानी तक्षशिला में प्रसिद्ध विद्वानों से शिक्षा पाने के लिए आया करते थे।

जातक कथाओं में काशी की भी चर्चा है जहां तक्षशिला में शिक्षित हुए विद्वानों ने शिक्षा-संस्थाएं स्थापित की थीं। जातक कथाओं से तक्षशिला की अध्यापन पद्धति का भी पता चलता है। उन शिक्षा-संस्थाओं में केवल चांडालों को छोड़ कर अन्य सभी जातियों के विद्यार्थी प्रवेश पा सकते थे। विद्यार्थी या तो अध्यापकों के साथ रहा करते थे या दिवा छात्र (डेस्कालर) के रूप में कक्षाओं में आकर विद्यार्जन करते थे। इन दिवा छात्रों में विवाहित छात्र भी होते थे। विद्यार्थियों से शिक्षा-शुल्क अग्रिम ले लिया जाता था अथवा शुल्क के बदले में विद्यार्थी गुरुओं की सेवा

वर्ष-1, अंक-3, अप्रैल - जून 2024 E-ISSN : 2584-2900

करते थे। पाठ्यक्रम में तीन वेद होते थे और कतिपय अन्य पाठ्यक्रम भी होते थे। विद्यार्थियों को 18 प्रकार के शिल्पों में से किसी एक में प्रवेश दिया जाता था। इनमें से विशेषकर कुछ शिल्पों की चर्चा की गई है, जैसे कि गज-विद्या, मंत्र-तंत्र, शकुन-विद्या, भिन्न-भिन्न प्रकार के अभिचार मंत्र धनुर्विद्या और चिकित्साशास्त्र। बहुधा एक शिक्षाचार्य के अधीन पांच सौ विद्यार्थी होते थे। शिक्षक अपने विद्यार्थियों पर बड़ा कड़ा अनुशासन रखते थे।

उपर्युक्त विषयों की शिक्षा के साथ-साथ उस युग में व्यावसयिक और तकनीकी प्रशिक्षण देने की भी प्रथा थी। बुद्ध के समय में चिकित्साशास्त्र की शिक्षा का स्तर कितना ऊंचा था इसका उल्लेख धर्म विज्ञान विषयक एक पद्धति ग्रंथ में किया गया है। इसमें चर्चा उस समय के सुप्रसिद्ध चिकित्सक जीवक की जीवनगाथा की है। जीवक राजगृह की एक गणिका के पुत्र थे जिनका पालन-पोषण मगध के राजकुमार अभय ने किया था। वहीं से वह एक परम विख्यात चिकित्साशास्त्र की शिक्षा पाने के लिए तक्षशिला भेजे गए थे। तक्षशिला में उन्होंने सात वर्ष बिताए थे और जड़ी-बूटियों के ज्ञान के संबंध में एक बड़ी कठिन व्यावहारिक परीक्षा पास करने के बाद ही वह उत्तीर्ण किए गए थे। चिकित्सक के रूप में काम करते-करते वह इतने प्रसिद्ध हो गए कि मगध के राजा बिंबिसार के राजवैद्य बना दिए गए। उसी काल में उन्होंने देश-भर में चिकित्सा और शल्य चिकित्सा के व्यवसाय का प्रचार-प्रसार किया था।

गुप्त-काल में शिक्षा-संस्थाएं

तीसरी शताब्दी से लेकर आगे तक ब्राह्मणवादी मंदिरों, बौद्ध विहारों तथा वैष्णव एवं शैव मठों ने भारतवासियों के सांस्कृक्तिक और शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय भूमिका निभाई थी। इन संस्थाओं ने सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक कृत्यों में उल्लेखनीय कार्य किए थे। गांवों में शिक्षा की देखरेख ये मंदिर ही किया करते थे। ब्राह्मण संस्थाओं और बौद्ध विहारों, दोनों में औपचारिक शिक्षा उपलब्ध थी। ब्राह्मण विद्यार्थियों में से ऐसे अनेक थे जो वर्षों तक विद्यार्थी जीवन ही बिताते थे। बौद्ध विहारों में छात्र केवल 10 वर्ष के लिए प्रवेश प्राप्त करते थे, किंतु जो भिक्षु बनना चाहते थे वे अधिक दिनों तक वहां ठहरते थे। औपचारिक शिक्षा में अधिक जोर व्याकरण और वेदों पर दिया जाता था। समाज की ब्राह्मणवादी शिक्षा-पद्धति में चार वर्षों की व्यवस्था का

वर्ष-1, अंक-3, अप्रैल - जून 2024 E-ISSN : 2584-2900

महत्त्वपूर्ण हाथ था। ब्राह्मण केंद्रों में दी जाने वाली और संस्कृत ग्रंथों में वर्णित शिक्षा उत्तरोतर मूलतः धर्मविज्ञान का ही रूप लेती गई। धीरे-धीरे हुआ यह कि शिक्षा प्रणाली सैद्धांतिक ज्ञान तथा व्यावहारिक और तकनीकी ज्ञान दो भागों में बंट गई। सैद्धांतिक ज्ञान का प्रचार ब्राह्मणों तक ही सीमित रहा तथा व्यावहारिक और तकनीकी ज्ञान व्यावसायिकों के अधिकार में आ गया। सिद्धांत रूप में ऐसे विद्यालय और केंद्र जिन्हें राजा की ओर से प्रश्रय दिया जाता था, वे तो तीनों उच्च वर्णों के लिए थे, किंतु व्यवहार में मुख्यतः ब्राह्मणों द्वारा ही प्रयुक्त होते थे जिन्होंने उन्हें कर्मशास्त्री गुरुकुल का रूप दे दिया था। बौद्ध विहारों ने अपना औपचारिक शिक्षण क्षेत्र व्याकरण और चिकित्साशास्त्र तक ही रखा था तथा वे ब्राह्मणों की तुलना में कम कट्टरपंथी थे।

नालंदा

बिहार में पटना के समीप नालंदा, उत्तर में प्रमुख बौद्ध संघाराम (विहार शिक्षा-केंद्र बन गया था। नालंदा के संबंध में की छठी और सातवीं शताब्दी ई. के पूर्वाद्ध में हमारी जानकारी का स्रोत प्रसिद्ध चीनी यात्री हेनसांग, नालंदा में तीन वर्ष रहे थे और एक अन्य चीनी यात्री इत्सिंग में वहां उसी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विहार में 10, वर्ष बिताए थे। इन चीनी यात्रियों के विवरणों से पता चलता है कि उस युग में नालंदा में एक हजार मठवासी (भिक्षु) और छात्र थे। किंतु इत्सिंग के समय में भारत में इस विद्यालय में अध्ययन करने वाले छात्रों की सख्या लगभग तीन हजार थी। नालंदा में चीन और दक्षिण-पूर्व एशिया के भी छात्र अध्ययन के लिए आया करते थे। नालंदा में की गई खुदाइयों से पता चलता है कि वहां बहुत बड़े क्षेत्र में सुनियोजित निर्मित मठ और मंदिर थे। नालंदा विश्वविद्यालय बौद्धों को दान में मिले गांवों की आय से ही चलता था। इस प्रकार शिक्षकों और छात्रों को अधिकांश सुविधाएं गांवों की ही आय से प्राप्त होती थी।

नालंदा विश्वविद्यालय में अध्ययन के लिए प्रवेश पाना बड़ा कठिन था। यहां अध्ययन के लिए देश के विभिन्न भागों से तो छात्र आते ही थे, देश के बाहर से भी आते थे। छात्र अतिथिशाला में रहते थे। अपनी विद्वता के लिए प्रसिद्ध अध्यापक छात्रों से वार्तालाप किया करते थे और इसी क्रम में वे छात्रों के मानसिक गुणों, आचरण और जीवन-पद्धति की जानकारी प्राप्त

वर्ष-1, अंक-3, अप्रैल - जून 2024 E-ISSN : 2584-2900

कर लेते थे। विश्वविद्यालय और अतिथिशाला, दोनों में दिनचर्या बहुत व्यवस्थित और नियमित थी। सब को समय की जानकारी एक जल-घड़ी की सहायता से दी जाती थी। नालंदा में शिक्षकों और छात्रों की कुल संख्या दस हजार थी, जिसमें से 8500 तो छात्र थे और शेष 1500 शिक्षक की श्रेणी के थे। उन शिक्षकों में से भी 1000 शिक्षक सूत्रों के 20 संग्रहों की व्याख्या कर सकते थे, 500 शिक्षक 30 संग्रहों की और शायद दस शिक्षक 50 संग्रहों की व्याख्या कर सकते थे। हेनसांग के समय में शीलभद्र नालंदा विश्वविद्यालय के अध्यक्ष थे। उसके पहले कांची के धर्मपाल इस पद पर थे, जो शीलभद्र के शिक्षक रह चुके थे। शीलभद्र के बाद धर्म कौर्ति अध्यक्ष बने थे।

विश्वविद्यालय में प्रातः काल से लेकर सूर्यास्त तक बड़े और छोटे दोनों तरह के समूहों या कक्षाओं में आजकल की ही तरह लेक्चर दिए जाते थे। संगोष्ठी प्रणाली की तरह शिक्षकों और छात्रों के बीच प्रश्न पूछने और परस्पर विचार-विमर्श की प्रक्रिया चलती थी। कहते हैं, नालंदा में उस समय ज्ञान प्राप्ति के जितने भी विषय और क्षेत्र थे, उनकी शिक्षा दी जाती थी, विषय दोनों प्रकार के थे, ब्राह्मणवादी और बौद्ध, धार्मिक और धर्मनिरपेक्ष, दार्शनिक और व्यावहारिक, विज्ञान और कला इत्यादि। किंतु नालंदा में वस्तुतः अधिक जोर 18 पंथों, वेदों और अन्य ग्रंथों, हेतु विद्या, शब्द विद्या, अथर्ववेद, सांख्य और संस्कृत व्याकरण इत्यादि के साथ-साथ महायान पर बल दिया जाता था। अध्ययन के समापन के बाद उपाधि प्रदान की जाती थी। उपाधियां योग्यता और सामाजिक स्थिति, दोनों के आधार पर दी जाती थी।

नालंदा विश्वविद्यालय में पुस्तकालय के संबंध में विस्तृत जानकारी तिब्बती ग्रंथो में दी हुई है। बताया गया है कि पुस्तकालय एक विस्तृत क्षेत्र में अवस्थित था और उसे एक काव्यमय नाम दे दिया गया था। धर्मनन पुस्तकालय के तीन बड़े-बड़े भवन थे, जिनके नाम थे- रत्नसागर, रत्नोदधि और रत्नरंजक जिनमें से रत्नसागर नौमंजिला था। जिसमें पांडुलिपियां और दुर्लभ कृतियां संग्रहित थीं, जैसे कि प्रज्ञापरमिता-सूत्र इत्यादि। 1197-1203 में बख्तियार खिजली ने नालंदा को नष्ट कर दिया था और पूरी संस्था को जला दिया था।

वर्ष-1, अंक-3, अप्रैल - जून 2024 E-ISSN : 2584-2900

अन्य शिक्षा-संस्थाएं

नालंदा की तरह के अन्य प्रसिद्ध विश्वविद्यालय थे, जैसे कि विक्रमशिला, वल्लभी और कांची विश्वविद्यालय। ये देश के विभिन्न भागों में, पांचवीं से सातवीं शताब्दी तक वर्तमान थे। पुरातत्वीय और साहित्यिक साक्ष्य से ज्ञात होता है कि ये बड़ी-बड़ी संस्थाएं शिक्षा-प्रदान करने के अलावा सैंकड़ों छात्रों और अध्यापकों के भोजन और रहने की व्यवस्था करती थीं। इन विद्या केंद्रों के संपोषण के लिए, नालंदा की ही तरह अनेक गांव दान में दिए गए थे। इन सभी विश्वविद्यालयों में बड़े समृद्ध पुस्तकालय थे, जिन्हें पुस्तकभंडार कहा जाता था। प्रमुख कक्ष में दुर्लभ और बहुमूल्य ग्रंथ रखे जाते थे और उनमें पुस्तक हाथ में लिए सरस्वती की मूर्ति रखी रहती थी। यह ठीक है कि इन संस्थाओं में विविध विषयों और विविध प्रकार की शिक्षा दी जाती थी, किंतु विशेष जोर उस विचारधारा और सिद्धांत पर दिया जाता था जिसकी अनुगामी वह संस्थाएं होती थी। उदाहरण के लिए, वल्लभी विश्वविद्यालय में विशेष ध्यान बौद्ध धर्म के हीनयान मत से संबंधित शिक्षा पर दिया जाता था। उसी प्रकार कांची विश्वविद्यालय में अन्य विषयों की तुलना में ब्राह्मणवादी शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया जाता था।

दक्षिण भारत में, पल्लव राज्य (500-800 ई.) के प्रारंभिक काल में शिक्षा संस्थाओं में प्रधानता जैनियों और बौद्धों की थी, जिन्हें बाद में ब्राह्मणों ने अपदस्थ कर दिया था। शिक्षा के केंद्र बौद्ध संघाराम ही बने हुए थे और वे नेल्लौर जिले में कृष्णा और गोदावरी नदियों की उपत्यका में बसी कांची में अवस्थित थे। बौद्ध केंद्रों का सारा ध्यान बौद्ध धर्म के अध्ययन पर था। यह वह युग था जब बौद्ध और हिंदू मतावलंबियों में घोर-विवाद चल रहा था और सारी शक्ति धर्मज्ञान की सूक्ष्म बातों की व्याख्या करने में लगाई जाती थी और बौद्धों को वह राजाश्रय प्राप्त नहीं था जो हिंदू धर्म के समर्थकों को प्राप्त था। हिंदू कालेज (घटिकाएं) मंदिरों से संलग्न थे। इन संस्थाओं में प्रवेश शुरू में हर द्विज के लिए खुला था, किंतु बाद में धीरे-धीरे ये संस्थाएं ब्राह्मणों के हाथ में आ गई और क्रमशः इनका शिक्षा क्षेत्र अध्ययन तक ही सिमटता गया, क्योंकि अनेक मामलों में इन्हें धन व्यापारियों से मिलता था।

मंदिर शिक्षा के प्रमुख और महत्त्वपूर्ण केंद्र होते थे। अनेक शिलालेखों से ज्ञात होता है कि इन मंदिरों में शिक्षकों और विद्यार्थियों के भोजन और संपोषण के लिए पूरी व्यवस्था रहती

वर्ष-1, अंक-3, अप्रैल - जून 2024 E-ISSN : 2584-2900

थी। ऐसे शिक्षा केंद्रों में अध्यापन के विषयों का भी उल्लेख मिलता है। उदाहरण के लिए पूर्वमीमांसा अध्यापन की चर्चा है जिसे प्रभाकर्म कहा जाता था। तिरूवोत्तियुर में, कुंभकोण में, एन्नायिराम में और अन्य स्थानों पर नागेश्वर स्वामी के मंदिर में इस प्रकार से भोजन और संपोषण की व्यवस्था थी। तिरूवोत्तियुर और तिरूयुकुदल से प्राप्त शिलालेख में मंदिर द्वारा संचालित एक शिक्षा-संस्था का बड़ा सुंदर वर्णन पाया जाता है। एक मंदिर से एक अस्पताल के भी संलग्न होने का उल्लेख मिलता है। मंदिरों की तरह अग्रहारा और घटिका का भी ज्ञान-प्रसार में हाथ रहा है। इसी प्रकार मठों का भी शिक्षा के प्रचार और प्रसार में महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है। चोल और पांड्या राजाओं के समय में (सातवीं और आठवीं शताब्दी) इन मठों की शक्ति और लोकप्रियता खूब बढ़ गई थी। रामायण और पुराणों के अध्ययन और व्याख्या के लिए राज्यश्रय प्राप्त ये मठ शैक्षिक क्रियाकलाप के महत्त्वपूर्ण केंद्र हो गए थे। ये मठ ऐसे स्थानों पर स्वभावतः ही अधिक उपयोगी और कारगर सिद्ध होते थे जहां तीर्थयात्रियों का आना-जाना बना रहता था और धार्मिक शास्त्रार्थ हुआ करते थे।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि शिक्षा प्रणाली अधिकांशतः समाज की सामाजिक-आर्थिक संरचना से प्रभावित होती है और यह कि तदनुसार परिवर्तन को आत्मसात् कर लेती है।